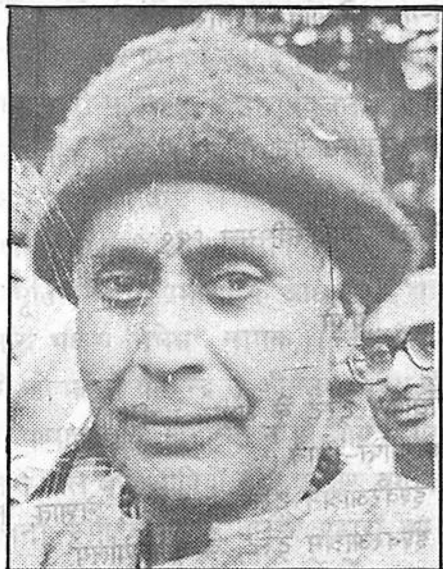
मांस खाना पाप है

प्रवक्ता :
ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जी महाराज

हिन्दी रूपान्तरकार :
प्रो. मखनलाल कुकिलू

प्रकाशक :
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
निशात, कश्मीर

मांस खाना पाप है



प्रवक्ता :

ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जी महाराज

प्रकाशक :
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
निशात, कश्मीर

हिन्दी रूपान्तरकार
प्रो. मखनलाल कुकिलू

प्रकाशक :

ईश्वरआश्रम ट्रस्ट,

गुप्त-गंगा, निशात, कश्मीर।

मुद्रक :

कश्मीर टाइम्स प्रेस (प्रा.लि.), जम्मू तवी

पथम संस्करण ईस्वी सन् १९९४

मूल्य.........रुपये

पुस्तक प्राप्ति-स्थान :

१. ईश्वरआश्रम ट्रस्ट, गुप्त-गंगा, निशात, कश्मीर
२. ईश्वरआश्रम ट्रस्ट, जम्मू कार्यालय,
   २-महेन्द्रनगर, कनाल रोड, जम्मू (तवी)।
३. ईश्वरआश्रम ट्रस्ट, दिल्ली कार्यालय, बी-१०-७३७१
   वसन्त कुंज, फोन : ६८९६२६६

दो शब्द

सद्गुरु महाराज की ८८वीं जन्म जयन्ती पर इस पुस्तिका का प्रकाशन कर हमें अपार हर्ष हो रहा है। यह पुस्तिका सद्गुरु ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जी महाराज के उन प्रवचनों पर आधारित है जो प्रवचन उन्होंने अहिंसा की महिमा तथा मांस भक्षण रूपी कदाचार पर अपने मुखारविन्द से दिये थे। शैव शास्त्रों के महनीय ग्रन्थों श्री तन्त्रालोक, श्रीमालिनी विजय, स्वच्छन्दतन्त्र, नेत्रतन्त्र तथा स्मृतिग्रन्थों के प्रमाणों के आधार पर मांस खाने की निन्दा, "मांस भक्षण निषेध" नामक, (दिवभाषा में लिखी गई) पुस्तिका में जो महान योगीन्द्र ने की, उसके रस की छीटों से भला ही कोई पाषाण हृदय विगलित न हो जाये। मांस भक्षण को प्रशस्त मानने वाले बुद्धिजीवियों तथा ब्राह्मण वर्ग को अपने तीखे व्यंग्य वचनों रूपी बाणों के करारे प्रहारों का शिकार बनाकर सद्गुरु महाराज ने मधुरतम वाक्यों में शाकाहारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। आजकल के इस आपत्तिकाल में भारतीयों विशेषकर विस्थापित कश्मीरी जनता के लिए यह अनिवार्य है कि वे अपने इहलौकिक तथा पारलौकिक उद्धार के लिए इस नृशंस, गर्हणीय तथा जघन्य रूप मांस सेवन की लत

से अपने को मुक्त रखे जिसके परिणाम स्वरूप वे अवश्य ही ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जीं महाराज के आत्मोन्नति रूप आशीर्वाद से अनुगृहीत होंगे। आइये आज के पावन पर्व पर हम मांस न खाने के कड़ी शपथ लें।

वैशाख कृष्ण द्वादशी
७ मई शनिवार, १९९४

प्रो. मखन लाल कुकिलू

बालांश्चयौवनस्थांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि।
सर्वानाविशते मृत्युरेवंभूतं जगदिदम्।।

ऐसी बात नहीं कि महाकाल पकी उमर वालों के ही प्राण हर लेते हैं, वह तो किसी के भी प्राण हर लेते हैं चाहे वह माता के उदर में स्थित हो, चाहे वह बालक हो, चाहे वह नौजवान हो, या चाहे वह प्रौढ़ व्यक्ति हो। यही तो संसार की रीति है। महाकाल जिसे संहारचक्र भी कहते हैं हर स्थान पर हर एक के पास जाता है। किसी के द्वारा इसे टोका नहीं जाता है। इस ऊपर दिये गये श्लोक में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रत्येक जीव, चाहे वह कुछ समय का ही गर्भगत हो, या नवजात शिशु हो, या बालक हो, या नवयुवक हो या प्रौढ़ व्यक्ति हो या वृद्ध हो, महाकाल के हाथों के प्रहार से बच नहीं सकता है। यह संसार का विधान है। अतः किसी बात के लिए चिन्तित होना बेकार है। हमें सदा प्रसन्न रहना चाहिए। एक सत्ताधारी, मिट्टी के लौंदे के समान है, जो वर्षा से टकरा कर ज़मीन में समा जाता है। तथा अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को खो कर शून्य में घुल-मिल

जाता है। इस संसार में सब कुछ अस्थायी है अत: लालच करना काहे की अकलमन्दी है। हमें किस लिए प्रलोभनों का शिकार बनना है? हमें किस लिए सम्पत्ति को इकट्ठा करना है, झूठे मुखोटों में रहकर सच्चाई को किसलिए भूल बैठना है।

शैवशास्त्रों के साथ-साथ अन्य शास्त्रों में भी अहिंसा नामक "यम" के महत्व पर पूरा प्रकाश डाला गया है। वह अहिंसा क्या है?

अहिंसा- अहिंसा यह पहला यम है। इसका तात्पर्य है हिंसा न करना। यह हिंसा दो प्रकार की है अमुख्य हिंसा और मुख्य हिंसा। अमुख्य हिंसा वह है कि जिसमें किसी की क्रियाओं या शब्दों पर भी पूरा ध्यान दिया जाता है। यदि किसी के शब्द या किसी की क्रिया दूसरे व्यक्ति को हानि पहुंचायेगी या किसी में क्रोध या नफरत पैदा करेगी वह भी एक प्रकार की हिंसा ही है। इस प्रकार की हिंसा का स्वरूप बहुत जटिल है। अत: आपने विनम्र और सरलभाषी बनना है। आपने इस हद तक अनुशासित बनना है कि आप दूसरों को किसी प्रकार की पीड़ा देने का प्रयास न करें। दूसरों के साथ ऊंचा बोलने या असभ्य व्यवहार करने में भी यह अहिंसा आप पर रोक लगाती है। यह अतिसूक्ष्म अहिंसा

शरीर आत्मा और मन कों कड़े अनुशासन में अनुशासित करके अपनानी चाहिए। जो इस प्रकार की अहिंसा को शरीर मन और आत्मा से पालन करता है और इस अनुशासन में पूरी तरह से प्रतिष्ठित है वही अपने अस्तित्व से स्वभावज वैरियों को भी प्रभावित करता है। ऐसी उसकी स्पन्दनात्मक शक्ति होती है। उदाहरण के रूप में यदि बिल्ली और चूहा इस प्रकार के व्यक्ति के पास हों, तो परस्पर वैरभाव को धारण करने पर भी, ये दोनों शान्त और एक दूसरे को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि बिल्ली की यह प्रवृत्ति होती है कि चूहे पर हमला करूं और चूहे की यह प्रवृत्ति होती है कि कि वह बिल्ली को देखकर भागने में सफल हो पर अहिंसा में प्रतिष्ठित व्यक्ति के सामने ये भी अहिंसक बनते हैं। न बिल्ली चूहे को देखकर उस पर हमला करती है न चूहा बिल्ली को देखकर भाग जाता है। इस प्रकार यह अहिंसा की ही व्यापक शक्ति है कि स्वभावज वैरियों को भी यह शान्तभाव से व्याप्त करती है। कहा भी है कि -

अहिंसा प्रतिष्ठायांतत्सन्निधौ वैरत्यागः।

अर्थात् अहिंसा में प्रतिष्ठित साधक के सामने स्वभाव से ही

एक दूसरे के साथ शत्रुता रखने वाले दो प्राणियों को संसार का कोई भी व्यक्ति आपस में टकरा नहीं सकता है। क्योंकि अहिंसा नामक यम का पालन करने वाला किसी को हानि नहीं पहुंचा सकता।

मुख्य अहिंसा तो उस हिंसा का परित्याग करना है जो सारी हिंसाओं में अधमरीति की है अर्थात् जीवित प्राणियों की हत्या या अपने आप को प्रसन्न करने के लिए या अपने खाने की भूख को मिटाने के लिए जीवित जन्तुओं को हनन। इससे महान दूसरा कोई पाप नहीं। इस अहिंसा में वास्तविक रूप से सुप्रतिष्ठित होने के लिए यह आवश्यक है कि हम मांस खाना पूरी तरह छोड़ दें। हम शतप्रतिशत शाकाहारी हों। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शुद्ध शाकाहारी ही तपस्या का मीठा फल प्राप्त कर सकता है। इस बात को याद रखना चाहिए कि मांस खाने वाला, मांस बनाने वाला और पशु हिंसा करने वाला समान रूप से पाप कर्मों का भागी नैतिक आचार से रहित और घोर अपराधी है। मांस खाने वाले का प्रत्येक कर्म दूषित माना जाता है। इतना ही नहीं यदि कोई पशुहिंसा या मांसाहार जैसे निन्दनीय कर्म का साक्षी भी रहे वह भी घोर अपराधी है। मैं आपसे जोरदार

शब्दों में इतना कहे देता हूं कि मांस खाना सबसे बुरा कर्म और भयंकर पाप है। इसकी जितनी निन्दा की जाये कम है। जो पाप पशु हिंसा में कसाई को है वही पाप मांस पकाने वाले का है, वही पाप मांस बेचने वाले का है और वही पाप मांस खाने वाले का है। जो कोई व्यक्ति हिंसा- सम्बन्धी जिस किसी कर्म का साक्षी हो उसकी गणना भी उपरोक्त पापियों के साथ होती है।

आप शायद यह सोचते होंगे कि पशु हत्या करने वाला कसाई ही एकमात्र पापी है, और कोई नहीं। आपकी यह विचारधारा सरासर गलत और निराधार है। इस जघन्य हिंसाकार्य में जो कोई व्यक्ति जिस किसी तरह से भाग लेगा वह समान रूप से पापों का हिस्सेदार होगा। यदि आप छोटा सा मांस का टुकड़ा भी हाथ में लेंगे तो आप भी कसाई से कुछ कम नहीं है। आप और कसाई दोनों उस समय एक ही वर्ग के समझे जायेंगे। इस विषय में किसी प्रकार का संशय नहीं है। स्वयं शाकाहारी होकर भी यदि आप मांसभक्षण जैसी महान हिंसा का विरोध नहीं करोगे, इस कार्य की ज़ोर-ज़ोर से निन्दा नहीं करोगे तो आप भी पापी हैं और यह माना जाता है कि आपने भी यही अपराध किया है। कहा भी है कि -

यथा ह्यतन्मयोऽप्येति पातितां तैः समागमात्।

अर्थात् यदि कोई स्वयं चौर न भी हो पर चौरों की संगति में पड़ने से वह भी चौर ही माना जाता है। यदि कोई शाकाहारी व्यक्ति कसाईयों के साथ संगति रखता हो, उनके साथ मित्रता के सम्बन्ध स्थापित करता हो तो वह शाकाहारी होने पर भी पापों से कलंकित और समान दण्ड का भागी बनता है। अतः यह आपका धर्म है कि न केवल शाकाहारी जीवन बिताये अपितु जोरदार शब्दों में पशु हत्या का विरोध करे और मांस खाने की निन्दा करे। मेरा यह सन्देश आप अपने समीप के बन्धुओं, सगे-सम्बन्धियों, माताओं, पिताओं, पुत्रों और पुत्रियों कों देना न भूलिये कि मांस खाना निन्दित कार्य है। याज्ञवल्क ने अपनी याज्ञवल्कस्मृति में कहा है कि पशुओं की हत्या में और उनके मांस को अपने आस्वाद के लिए खाने में तीन जघन्य अपराधों का भागी बनना पड़ता है। ये तीन अपराध हैं प्राणाहरण, पीड़ा और वीर्यक्षेप।

प्राणाहरण- पशुओं के जीवन का हरण करना प्राणाहरण कहा गया है। यह एक महान अपराध है। यह बेचारा पशु भोला-भाला है तथा इसने ऐसा कुछ नहीं किया होता है जिसके

परिणाम -स्वरूप इसे ऐसा कठोर दण्ड दिया जाये। इस पाप का बुरा फल न जाने कितने जन्मों तक भुगतना पड़ता है।

पीड़ा- हत्या के समय पशु को महान पीड़ा होती है। इस पीड़ा से इसके रोम-रोम सिहर उठते हैं इसके मर्म विलख उठते हैं। भोले भाले पशु के हनन के इस दुःख को ही पीड़ा के नाम से पुकारा जाता है।

वीर्यक्षेप- हत्या के समय पशुओं के बल को छीन लेने का अपराध ही वीर्यक्षेप कहा जाता है। अर्थात् हत्या के समय पशु अपने सारे अंगों को बलपूर्वक छटपटाता है ताकि किसी न किसी प्रकार से वह अपने आपको बचा सके। पर हत्यारे का प्रहार उस पर कुठाराघात बन कर ही दम लेता है। शास्त्रों में भी इन उपरोक्त तीन अपराधियों की अलग-अलग दण्ड विधि कही गई है। जैसे प्राणाहरण नामक अपराध करने वालों को, अर्थात् जो पशुओं के जीवन का हरण करते हैं, उन्हें बीस जन्म लेने पड़ते हैं, जिनमें प्रत्येक जन्म में वह पूर्ण आयु को कभी प्राप्त नहीं करता है अर्थात् प्रत्येक जन्म में समय से पहले वह अचानक मृत्यु का शिकार बन जाता है, या बाल्यावस्था में ही उसकी मृत्यु होती है या युवावस्था में वह मर जाता है या प्रौढ़ अवस्था में

प्राणों से हाथ धो बैठता है। प्रत्येक अवस्था में इनकी मृत्यु भयानक रूप से होती है। दु:ख और पीड़ा से इनके प्राण कराह उठते हैं। पीड़ा नामक अपराध करने वालों को भी बीस बार जन्म लेकर असह्य शारीरिक पीड़ा और संताप को भुगतना पड़ता है। इनका जीवन असमानता और संघर्ष से पूर्ण होता है। इन लोगों को कभी मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं होती अपितु पारिवारिक लड़ाई झगड़ों आदि निन्दनीय दुष्कर्मों से परेशान होना पड़ता है। वे सदा असहाय और कभी प्रसन्न नहीं दिखाई देते हैं। वे तनावग्रस्त और चिन्ताओं से घेरे रहते हैं। इनका जीवन अनिश्चितता और अनियमितता का शिकार बनता है।

पशु की शक्ति को उसकी हत्या करने से नष्ट करने वाले वीर्यक्षेप नामक अपराध के दोषी व्यक्ति भी बीस बार जन्म लेकर हर जन्म में शक्तिहीन और अच्छे स्वास्थ्य से वंचित रहते हैं। अर्थात् हर जन्म में उन्हें शारीरिक कमजोरी रहती है और दवाई खाये बिना एक क्षण भी काट नहीं सकते हैं। जीवित ही जो मरा हुआ लगे, उस व्यक्ति की तरह वे भी प्रयोजन हीन और निस्सार होते हैं। इन तीन नृशंस अपराधों के लिए उपरोक्त दण्ड उन व्यक्तियों को मिलते हैं जो मांस का सेवन करते हैं।

यही कारण है कि हम मांस को "मां,स", कहते हैं अर्थात् मुझे (मां) वह (स) खायेगा। कहा भी है कि -

मांसभक्षयितामुत्र यस्यमांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्यमांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिण: ।।

प्राचीन ऋषियों और सन्तों ने कहा है कि जिस किसी का मांस हम इस संसार में खायेंगें वह भी हमारे मांस को दूसरे जन्म में इसी तरह से खायेगा।

इसका तात्पर्य यह है कि यदि आप किसी पशु का मांस खाएंगें वह पशु भी दूसरे ज़न्म में हमारा पीछा नहीं छोड़ेगा। अपितु वह पशु हमारा पीछा अन्यान्य लोकों में भी करेगा। वह हमारा पीछा एक जन्म में नहीं बीसों जन्मों में लगातार रूप से करेगा। इन बीसों जन्मों में पशु के मांस को खाने वाले उसी दण्ड को भुगतेंगे जिनका मैंने ऊपर संकेत किया। मनु ने भी अपनी मनुस्मृति में इससे अधिक शक्तिशाली दण्ड विधान की विधि बताई है। वे कहते हैं कि-

यावन्ति पशुलोमानि तावत्कृत्वो ह मारणम् ।
वृथा पशुघ्न: प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ।।

अर्थात् जिस पशु की हम हत्या करते हैं और जिसका मांस हम खाते हैं उस पशु के शरीर पर पाये जाने वाले बालों को गिन लो उतने ही जन्मों में हम उस पशु के द्वारा मारे जायेंगें। अपनी मनुस्मृति में आगे चल कर मनु जी शाकाहारी की महानता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि–

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।
मांसानि न च खादेत्यः तयोः पुण्यफलं समम् ।।

अर्थात् जो जीवनभर मांस खाने से परहेज़ करते हैं वे मरने के बाद जिस पुण्य फल को पाते हैं वह फल सौ सालों तक हर साल किये जाने वाले अश्वमेघ यज्ञ के पुण्य फल के समान है।

ज़रा इस बात पर विचार करें कि एक व्यक्ति जन्मभर प्रति वर्ष अश्वमेघ यज्ञ करके कितना पापहीन, पुण्यवान और सौभाग्यशाली बनेगा पर मांस न खाने वाला उस अश्वमेघ यज्ञ करने वाले साधक से भी अधिक सौभाग्यशाली, पुण्यवान और पापहीन होगा। यह है मांस न खाने की बड़ाई। यही बात हमारे शैव-शास्त्रों में भी कही गई है कि–

न विवाहे पशुं हन्यात् न चात्मार्थे कदाचन।
यागकाले च न हन्यात् नेष्टबंधुसमागमे।।

अर्थात् विवाह जैसे उत्सवों पर हमें मांस का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अपनी मानसिक प्रसन्नता के लिए मांस का सेवन नहीं करना चाहिए। धार्मिक कार्यों में तथा अपने इष्टजनों या समीपस्थ बन्धु बान्धवों को आदर सत्कार करने के लिए मांस का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

कहने का तात्पर्य यह है कि हमें न विवाहादि उत्सवों पर मांस का सेवन करना चाहिए न ही हम इस विचार से अपने को विभ्रान्त करें कि स्वास्थ्य की रक्षा के लिए मांस का सेवन आवश्यक है। यह कोई कारण नहीं। क्यों हम मृत्यु के डर से और अन्धविश्वास के भय से एक बेजुबान पशु की हत्या करें। एक भोले भाले पशु के जीवन को न्योछावर करके अपनी रक्षा का सोंचने से उचित यही है कि हम मर ही जायें। आप लोगों में से यदि कोई यह कहे कि हमें अपने मेहमानों के लिए या अपने नये-नये दामाद के लिए या लड़की के ससुराल वालों के लिए मांस आदि का प्रयोग अवश्य करना पड़ता है नहीं तो उनका अनादर होगा जिसका बुरा परिणाम निकलेगा या वे यह सोचेंगे

कि हमारा आदर सत्कार करने वाला बहुत ही कंजूस है, अच्छी तरह से अतिथियों को सम्मानित करने में तथा उन्हें खिलाने पिलाने के लिए पैसा खर्च करने में तंगदिल्ली बरतता है। पर मैं आप लोगों से यह कहता हूं कि यदि आप सचमुच अपने दामाद या अपने मेहमानों से सच्चा प्रेम रखते हों तो उन्हें अनेक प्रकार के स्वादिष्ठ व्यञ्जनों पनीर, मीठा पुलाव, दही आदि शाकाहारी पदार्थों से तीमारदारी करो। उन्हें मांस से बने अनेक प्रकार के व्यञ्जनों से सत्कार न करो। इस प्रकार के पदार्थों के परोसने से आप उनका आदर सत्कार या प्यार नहीं करते हैं अपितु आप उनकी घृणा करते हैं और आप उन निन्दनीय कर्मों को प्रोत्साहित करते हैं जिनसे उनको बीस जन्मों तक नरक भुगतना पड़ेगा। इस प्रकार आप उन्हें सुमार्ग के स्थान पर कुत्सित मार्ग पर ला खड़ा करते हैं।

आप शायद यह भी कहेंगे कि हमें एक बड़ी समस्या है कि हमारे अच्छे पढ़े लिखे पुरोहित ने हमें सलाह दी है कि हम एक पशु की बलि दें-जो हमें आने वाली आपत्ति या भय से मुक्त करेगी। मैं कहता हूं कि ऐसी विचारधारा बिल्कुल बेहूदा है, बेकार है, असंगत है। मेरे पिता श्री नारायण जू रैणा एक दिन पनी

इष्टदेवी ज्वाला जी के तीर्थस्थान 'खिव' (जो श्रीनगर से २०-२५ कि.मी. की दूरी पर है) के ज्वालामन्दिर में पूजा करने चले और वहां भेड़ के फेफड़ों की बलि चढ़ाई। मैं यह देखकर आश्चर्यचकित हो जाता था कि क्या इस धरती पर ऐसे भी लोग हैं जो यह सोचते हैं कि एक भोले भाले, मूक भेड़ की प्राण हत्या करने से वे स्वर्गधाम को सिधारेंगे। इस बात का मन में संकल्प भी नहीं करना चाहिए। मेरी आप लोगों से यही सच्ची सलाह है कि कभी, किसी भी हालत में मांस का सेवन मत करो। मांस का सेवन न करना ही सच्ची अहिंसा है।

जैसा मैंने कहा है कि शैवशास्त्रों में मांसभक्षण हर प्रकार से निषिद्ध है। जिन यज्ञ आदि देवकार्यों में पुश-हिंसा का विधान है वे यज्ञ आदि ज्ञानविषयक ही हैं अर्थात् जहां मारा गया पशु प्राण छोड़ने के पश्चात् तत्काल परमंपद को पाता है। आचार्य अभिनव गुप्त ने तन्त्रालोक में कहा है कि-

तेनैतन्मारणं नोक्तं दीक्षेयं चित्ररूपिणी।
इयं तु योजनैव स्यात्पशोर्देवाय तर्पणे।।

(आ. १६, श्लोक ६१)

अर्थात् यज्ञ आदि कर्मों में पशु हत्या हत्या नहीं मानी जाती है। यह तो अभीष्टदेव को संतृप्त करने के लिए पशु की विचित्र रूप योजनात्मिका दीक्षा है।

नेत्रतन्त्र में कहा है कि --

एषामनुग्रहार्थाय पशूनां तु वरानने।
मोचयन्ति हि पापेभ्यः पाशौघांश्देयन्ति तान्।।
पशूनामुपयुक्तानां नित्यमूर्ध्वगतिर्भवेत्।।

(२० अ. श्लोक ८)

हे पार्वती! इन यज्ञादि कर्मों में प्रयोग में लाये गये पशुओं की सदा स्वर्गलोक प्राप्ति हो अतः इन पर अनुग्रह करने के लिए ही इन पशुओं को पापों से मुक्त किया जाता है तथा इनके ढेर सारे बन्धन काटे जाते हैं।

इस तरह यह बात स्पष्ट होती है कि पशु-हत्या अमंगलकारिणी होने पर भी ज्ञानियों द्वारा ज्ञानयज्ञ में इसका प्रयोग पशु की मुक्ति का साधन बनती है। इसी बात को ~~~ में और स्पष्ट करके कहा गया है कि :

पशोर्महोपकारोऽयं तदात्वेऽप्यप्रियं भवेत्।
व्याधिच्छेदौषध तपोयोजनात्र निदर्शनम्।।

अर्थात् यज्ञ में पशु का मारना यद्यपि बहुत बुरा लगता है पर पशु के लिए यहां शुभ फलदायक है। जैसे औषधि का सेवन कटु होने पर भी बीमारी को हटाने में समर्थ होता है अथवा तपश्चर्या आरम्भ में कष्टकारी होने पर भी परिणाम में परतत्त्व के साथ मिलाने से महान उपकार करती है।

इस प्रकार तन्त्रालोक के कथनानुसार यज्ञ में यह पशुमारण पशु के लिए संसार सागर से पार ले जाने का साधन है और उसे मुक्ति दिलाने में सक्षम है। इसके विपरीत अज्ञानी के द्वारा यज्ञानुष्ठान में मारा गया पशु अनर्थकारी है तथा पशु का भी मुक्ति प्राप्तिरूप अनुग्रह सिद्ध नहीं होता है। यही नेत्रतन्त्र में भी कहा गया है कि-

पशवः पतियागार्थमुपयुक्ता नचान्यथा।

(२० अ. श्लोक ७)

अर्थात् पशु ज्ञानयज्ञक्रिया के लिए ही मारण के योग्य हैं अन्य

भक्षण आदि क्रियाओं के लिए नहीं।

यह कहना अनुचित नहीं कि केवल पतियाग आदि में लाये गये पशुओं की अच्छी गति होती है अन्य किसी प्रकार से नहीं। उस ज्ञान यज्ञ को छोड़कर अन्य किसी अनुष्ठान में मांस प्रयोग सर्वथा निषिद्ध है। श्रीतन्त्रालोक विवेक में आचार्य जयरथ ने भी कहा है कि-

'यथात्मनि हिंसा न कार्या तथा परत्रापि नेति स्वपरयोरात्मरूपतयावभासनेन भेदविगलनात् संविद एवाभिव्यक्तिर्भवेत्।'

(तं.वि. ४ आ. १०५ पृष्ठ)

इति। तथा

अलब्धसंविदैकात्म्योपि लोको लोभलौल्याभ्यां यत्तत्कुर्वाणो लोकयात्रामुच्छिन्द्यात्।

(त.वि. ४ आ. २७० पृष्ठ)

अर्थात् जैसे स्वात्महिंसा निषिद्ध है वैसे ही परहिंसा भी। अपने

और दूसरे के स्वात्मरूपता के ही अवभासन से भेदवृत्ति मिट जाती है और संवित् की ही अभिव्यक्ति होती है। तथा संवित् प्राप्ति के अभाव में एकात्मता को न पाने से साधारण लोग लोभ और चपलता के कारण जो कुछ करते रहते हैं उससे लोक मर्यादा समूल नष्ट हो जायेगी। लोकमर्यादा के नष्ट हो जाने के भय से ही सिद्धज्ञानी के लिए सत्कर्मों का परित्याग और असत् कर्मों का ग्रहण सर्वथा अनुचित है, भगवान् वासुदेव ने श्रीगीता में कहा है कि-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

अर्थात् ज्ञानवान जो कर्म करता है साधारण लोग उसी का अनुसरण करते हैं। वह अपने विलक्षण कर्मों से जो आदर्श स्थापित कर देता है सारा विश्व उसके अनुसार कार्य करता है।

इसी आशय से किसी और ग्रन्थ में भी इस पर प्रकाश डाला गया है कि-

बुद्धाद्वैतसतत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि।
शुनां तत्त्वदृशां चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे।।

क्व मांसं क्वशिवे भक्तिः क्व मद्यं क्व शिवार्चनम् ।
मद्यादिपूजानिरतैः सुदुष्प्रापो हि शंकरः ।।

अर्थात् अद्वैत तत्त्व के स्वरूप को जानकर जो अपनी अच्छा से आचरण करते हैं उन्हें ज्ञानवानों या पशुओं के संग अपवित्र भक्षण में कोई भेद नहीं दीखता। कहां मांस शराब आदि का सेवन करना, कहां शिव में भक्ति या शिव की पूजा करना। मांस खाने वाले साधकों के द्वारा शिवतत्त्व को जानना अतीव दुर्लभ है। शिव तत्त्व को वे ही जानते हैं जो-

अदाम्भिको गुरौ भक्तो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
शिवपूजापरो मौनी मद्यमांस पराङ्मुखः ।।

अर्थात् छल-कपट विहीन, सद्गुरु पर अपार भक्ति रखने वाला, ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय, मौन रहने वाला, शिव पूजा तत्पर, मद्य और मांस का सेवन न करने वाला साधक ही शिव तत्त्व को जानता है। अतः जगत की सृष्टि स्थिति और संहार करने में समर्थ वीर महागुरु ही याग आदि पर पशु-हत्या करने का अधिकारी है। अन्य लोग नहीं ऐसा निश्चय करना चाहिए।

श्री स्वच्छन्द तन्त्र में कहा है कि-

मन्त्रा करणभूतास्तु पशुकार्यस्य साधने।
आचार्यः करणं प्रोक्तः शिवरूपो यतः स्मृतः।।

अर्थात् यज्ञादि में पशु कार्य (मारण आदि) को सफल बनाने के-लिए मन्त्र साधनरूप है और मन्त्रोच्चारक आचार्य स्वयं शिव रूप होने से साधक है।

नेत्र तंन्त्र में भी कहा है कि-

एवं व्याप्तिं तु यो वेत्ति परापर विभागतः।
सभवेन्मोचकः साक्षात् शिवः परमकारणम्।।
क्षयं नयत्यसौ पाशान्ददात्येव परं पदम्।
योजन्या योजने शक्तः शिवशक्ति प्रभावतः।।

अर्थात् जो इस प्रकार परापर व्याप्ति का ज्ञाता होता है वह परमकारण साक्षात् शिव ही है और वहीं मुक्ति दाता है। शिव की शक्ति के प्रभाव से ही ऐसा आचार्य कर्मपाशों को काटने, परमपद को दिलाने और योजनी शक्ति से परमशिव के साथ मिलाने में समर्थ होता है। इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ, निर्विकल्पदशा पर आरूढ़ साधक ही ज्ञान क्रिया में पशु हत्या का अधिकारी है। जो कई मांस भक्षण

के आग्रही "अलि पिशित पुरन्ध्री भोगपर्याकुलोऽहं- भैरवोऽहं शिवोऽहम्" अथवा "बाह्यचर्या विहीनस्य दुर्लभा कौलिकीस्थिति:" आदि शास्त्रों के उद्धरण देकर अपना पलड़ा भारी बनाने की चेष्ठा करते हैं वे भी इस बात को अंच्छी तरह से समझ लें कि शास्त्रों के ये उद्धरण भी उन्हीं लोगों के लिए हैं जो पूरी तरह से तत्त्व ज्ञानी हों। कहा है कि-

नन्वदिव्येन देहेन यद्यत्पूजाक्रमं जपम्।
किञ्चित्कुर्यात्तु तत्तस्य सर्वं भवति निष्फलम्।।

अर्थात् तत्त्वज्ञान के बिना जो कुछ जप पूजा याग आदि क्रम किया जाये वह सब कुछ निष्फल होता है। इसीलिए आचार्य अभिनवगुप्त ने कहा है कि- "तत्रोक्तमन्त्रतादात्म्याद्भैरवात्मत्वमानयेत्।" अर्थात् शास्त्रों में कहे गये मन्त्र तादात्म्य की विधि से अपने में भैरव-भाव को सुप्रतिष्ठित करे। श्रीमालिनी विजय में भी कहा है कि-

तत्त्वे निश्चलचित्तस्तु भुञ्जानो विषयानपि।
न संस्पृश्येत दोषैः स पद्मपत्रमिवाम्भसा।।
विषापहारिमन्त्रादिसंनद्धो भक्षयन्नपि।
विषं न मुह्यते तेन तद्वद्योगी महामतिः।।-

अर्थात् परतत्त्व में अचल चित्त वाला सांसारिक विषयों को भोगता हुआ भी उनके दोषों से उस प्रकार प्रभावित नहीं होता है जैसे कमल का पत्ता जल से लिप्त नहीं होता। जैसे मन्त्रों से ज़हर के प्रभाव को दूर करने में समर्थ गारूड़ी ज़हर खाकर उसके प्रभाव से मोहित नहीं होता उसी तरह से महान् ज्ञानी योगी विषयों का लगातार सेवन करने पर भी उनके दोषों से मलिन नहीं होता।

इस कथन से भगवान् ने इस बात को परिपुष्ट किया है कि महायोगीन्द्रों को ही विहित और अविहित कार्य करने का पूरा अधिकार है। अत: ज्ञानयोग को छोड़कर अन्यान्य मांस आदि का सेवन करना सबों को नरक में जाने का कारण बन सकता है। कहा भी है कि पशु की तरह विषयभोग लालसा से मांस का सेवन करने वाला ज्ञानी वीरव्रती होके भी विघ्नों का पात्र बन कर नरक को जाता है।। आचार्य जयरथने भी तन्त्रालोक विवेक में कहा है कि- **"यागादन्यत्र पुनरियं हिंसैव निषिद्धत्वात्।"** अर्थात् ज्ञानयाग को छोड़कर पशु हिंसा हिंसा होने के कारण सर्वथा निषिद्ध है। यदि ज्ञानी गुरु न मिले तो यागक्रिया में पशु हिंसा कदापि न करे। भोजनादि के साथ मांस सेवन की बात

ही नहीं। आचार्य अभिनवगुप्तने तन्त्रालोक के २९वें आह्निक में कहा है कि जो लोग विषयभोगों की लोलुपता के कारण मांस आदि का सेवन करते हैं वे रौरव नामक भीषण नरक में जाते हैं और हजारों यातनाओं के शिकार बनते हैं।

जो लोग ज्ञानयाग के याजी होते हैं उनके लक्षण इस प्रकार हैं-

नचासौ कुरुते पापं नैवपुण्यं च सुव्रते।
कृतकृत्यः प्रसन्नात्मा कृत्यं चास्य नविद्यते।।
इहलोके परस्मिंश्च परिपूर्णस्तु सर्वदा।
धर्माधर्मविनिर्मुक्तः पुण्य पाप विवर्जितः।।
न चास्य भक्ष्याभक्ष्यं हि न पेयापेयमेवच।
नापवित्रं हि तस्यास्ति न पवित्रं हि सुव्रते।।
निरपेक्षो ह्यसौ नित्यं सर्वापेक्षाविवर्जितः।
नास्यक्षेत्रं नास्य तीर्थं नियमो यम एवच।।
सर्वज्ञः परितृप्तश्च परिपूर्णः स्वभावतः।
स्वतन्त्रोऽलुप्तसामर्थ्यस्त्वनादिनिधनाश्रितः।।

इत्यादि।

अर्थात् हे पार्वती! ज्ञानयागयाजी साधक पाप-पुण्य अकर्ता, कृतकृत्य, प्रसन्नचित्त, शेषकृत्य रहित, धर्म अर्धम से रहित तथा इह लोक और परलोक में सदा परिपूर्ण होता है। ऐसे साधक के लिए न कुछ अपवित्र है न पवित्र है, न कोई तीर्थ है न कोई क्षेत्र है, न कोई यम या नियम है वह निरपेक्ष है, सर्वज्ञ है, स्वभाव से ही परिपूर्ण और नित्यतृप्त है, स्वतन्त्र है, अनष्ट सामर्थ्य वाला तथा परकला में अधिष्ठित है। स्वच्छन्द पद पर आसीन ऐसा साधक स्वच्छन्दनाथ जैसा ही होता है।

इस प्रकार स्वच्छन्दतन्त्र के आधार पर परमेश्वर के परशक्तिपात से पवित्र बने हुए अलौकिक साधक अलौकिक कार्य करने वाले होते हैं। उनके लिएं पशु को यज्ञ में मार कर उसे तत्काल मुक्ति दिलाने की बात तो साधारण सी बात होती है। ऐसे योगीन्द्रों के साथ समानता करके उनका सा आचरण करके मांस खाने की विधि को बिना समझे उचित ठहराना बेहूदगी और मूर्खता के सिवा कुछ नहीं। अर्थात् वे उपरोक्त अवस्था को अपनाये बिना विषयभोगों की चपलता के परिणामस्वरूप ही पशु की तरह मांस भक्षण करते हैं। परिमित लेशमात्र सुख प्राप्ति से वे अन्तःकरण को मलिन और म्लान बनाते हैं और नित्य

सुख से कोसों दूर हो जाते हैं। दूसरी बात यह उल्लेखनीय है कि शिवमय बने हुए विद्वान साधक का यह असाधारण चिन्ह है कि उसके मात्र दृष्टिपात से शिष्य शिव ही बन जाता है कहा भी है कि-

दर्शनात्स्पर्शनात् वापि विततात् भवसागरात्।
तारयिष्यन्ति योगीन्द्राः कुलाचार प्रतिष्ठिताः।।
हेलया क्रीडया वापि आदरात् वाथ तत्त्ववित्।
यस्य संपातयेत् दृष्टिं स मुक्तस्त्क्षणात्प्रिये।।

अर्थात् कुलाचार में प्रतिष्ठित योगी अपने शिष्य को दर्शनमात्र या स्पर्शमात्र से इस अपार भवसागर से पार लेते हैं। शिव तत्त्व को जानने वाला योगी यदि बिना किसी प्रयोजन से, या खेल खेल में ही या आदर के साथ किसी पर दृष्टिपात करता है वह उसी क्षण मुक्त होता है।

अतः स्वात्मयज्ञ परायण होने की डींगें मारने वाले साधकों से बच के रहना चाहिए। ऐसे लोगों से जो मांस भक्षण की विधि बताई जाती है वह न केवल उसे नरक में धकेलती है अपितु उसका अनुसरण करने वालों को भी नरकगामी बनाती है।

इसके अतिरिक्त लोक मर्यादा उल्लंघन करने के भी वे भागी होते हैं। ब्राह्मणों के लिए तो अहिंसा धर्म सारे धर्मों में से श्रेष्ठ हैं। मनु ने अपनी मनुस्मृति में कहा है कि-

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्म सुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न कश्चित् सुखमेधते।।
यो बन्धनवध क्लेशान्प्राणिनां नचिकीर्षति।
स सर्वस्य हित प्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते।
यत् ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्रच।
तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किंचन।।
नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्।।
नभक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत्।
स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्चनपीड़्यते।।

अर्थात् जो आत्मसुख की इच्छा से भोलेभाले पशुओं का हनन करता है वह न जीवित अवस्था में न मरने के बाद ही किसी सुख को प्राप्त करता है। जो प्राणियों का वध या वीर्याहरण या उन्हें पीडा नही पहुंचाता है, सबों का हित चाहनेवाला वह अत्यन्त सुख को पाता है। जो किसी की हिंसा नहीं करता, वह जिस

किसी का ध्यान करता है, जो कुछ करता है, जिस किसी चीज़ को पाने की चेष्टा करता है, उसे अनायास ही प्राप्त करता है। जीवधारियों की हिंसा किए बिना मांस कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता है। प्राणियों का वध नरक प्राप्ति का साधन है अतः मांस खाना पूरी तरह से त्याग दें। जो व्यक्ति पिशाच की तरह मांस का सेवन नहीं करता है वह सारे लोकों में प्यारा बनता है तथा कभी बीमारियों से पीड़ित नहीं होता है।

इस प्रकार मनु जी ने मांस खाने की जोरदार शब्दों में निन्दा की है। इतना ही नहीं उन्होंने स्वात्मयज्ञ परायण साधक के लिए भी यज्ञादिक्रिया में मांस बलि का निषेध किया है। उन्होंने कहा है कि-

समुत्पत्तिं च मांसस्य वध बन्धौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्त्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्।।

इस श्लोक के कथनानुसार हमें हर प्रकार के मांस भक्षण से सदा परहेज करना चाहिए और मांस भक्षण रूपी महापाप से छुटकारा पाना चाहिए।

ऊपर दिये गये महान् शैवशास्त्रों तथा स्मृति-ग्रन्थों के आधार

पर उन लोगों से हम आग्रह करते हैं, जो मांस भक्षण रूपी परिमित सुख लेश को अनन्त सुख समझ कर अपना जीवन व्यर्थ में गंवाते हैं और हजारों यातनाओं और बीमारियों के शिकार बने हुए हैं, कि वे इस दुष्कर्म से सदा के लिए दूर रहे और अपनी आत्मा का उद्धार करे। कहा है कि-

मांसाद्याहार रतो ये वै
मार्गयन्ति परं पद्म।
शिवस्यैव तिरोधान
शक्त्याघ्राता भवन्ति तें।।
पतियागमकृत्वैव
ये शैवा मांसभक्षका:।
अशिवा: ते तु विज्ञेया:
शैवशास्त्र बहिष्कृता:।।
अनिष्टा भैरवं देवं
वृथैव मांस भक्षका:।
ये, ते निमग्नास्तमसि
शैव शास्त्रेष्वपण्डिता:।।

अर्थात् जो मांस आदि के आहार में लगकर परमपंद को ढूंढते

हैं उन्हें परमशिव की तिरोधान शक्ति (निग्रहशक्ति) का शिकार समझना चाहिए। जो अपने आप को शैव कहने वाले साधक पतियाग को किये बिना मांस का सेवन करते हैं, शैव शास्त्रों के अनधिकारी वे शैव कहने के योग्य नहीं हैं। जो साधक स्वस्वरूप, स्वमार्गस्थ, स्वसंवेद्य, स्वतेजस, स्वानन्दमय, स्वात्मशक्ति स्थित भैरव देव का यजन किये बिना मांसाहार करते हैं वे शैव शास्त्रों के मर्म को न जानने वाले घोर अन्धकार में डूब जाते हैं।

इति।

शिवभक्त्यामृतस्वादात्तृणीकृत रसान्तरः
राजानकलक्ष्मणाभिख्यः श्रीमन्नारायणात्मजः।
प्राकाश्यमनयच्छैव शास्त्रानुभव साधितम्
मांसाघभक्षण विधिमविद्यातिमिरापहम्।।

शिव भक्ति रूपी अमृत के आस्वाद करने से अन्य सारे रसों को निस्सार समझकर श्री नारायणजू रैणा के सुपुत्र राजानक लक्ष्मण ने शैव शास्त्रों के गहरे अध्ययन के अनुभव से प्राप्त, अविधा रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाली मांस न खाने की विधि को भक्तजनों के पारलौकिक लाभ के लिए प्रकाश में लाया।।